Research Vidyapith International Multidisciplinary Journal

(International Open Access, Peer-reviewed & Refereed Journal)

(Multidisciplinary, Monthly, Multilanguage)

*** Vol-3* *Issue-8* *August 2026***

www.researchvidyapith.com **ISSN (Online): 3048-7331**

महाभारत में आदर्श नगर की अवधारणा: एक ऐतिहासिक अध्ययन

आंचल देवी

शोध छात्रा, प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग, गुरुकुल कांगड़ी समविश्वविद्यालय, हरिद्वार

डॉ. दीपा गुप्ता

प्रोफेसर, प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्त्व विभाग, कन्या गुरुकुल परिसर, ज्वालापुर, गुरुकुल कांगड़ी समविश्वविद्यालय, हरिद्वार

Article Info: *(Received- 07/06/2026, Accept- 06/07/2026, Published- 06/08/2026)*

DOI- 10.70650/rvimj.2026v3i8005

सारांश

महाभारत प्राचीन भारतीय इतिहास, समाज, राजनीति, अर्थव्यवस्था तथा सांस्कृतिक जीवन के अध्ययन का एक महत्त्वपूर्ण साहित्यिक स्रोत है। इसमें नगर केवल राजसत्ता के निवास–स्थान के रूप में नहीं, बल्कि प्रशासन, सुरक्षा, व्यापार, शिल्प, शिक्षा, धर्म तथा सामाजिक जीवन के संगठित केन्द्र के रूप में प्रस्तुत हुए हैं। महाभारत के शान्तिपर्व में आदर्श नगर एवं दुर्ग की संरचना से संबंधित जो निर्देश प्राप्त होते हैं, उनमें नगर की भौगोलिक स्थिति, सुरक्षा–व्यवस्था, अन्न एवं शस्त्र–संग्रह, सड़कें, बाजार, शिल्पी, विद्वान, जल–स्रोत, उद्यान, राजप्रासाद तथा प्रशासनिक व्यवस्था जैसे अनेक पक्ष सम्मिलित हैं। इस प्रकार महाभारत में नगर की अवधारणा बहुआयामी है, जिसमें भौतिक संरचना के साथ आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक तत्वों का समन्वय दिखाई देता है। प्रस्तुत शोधपत्र का उद्देश्य महाभारत में वर्णित आदर्श नगर की अवधारणा का ऐतिहासिक विश्लेषण करना तथा उसके प्रमुख लक्षणों के आधार पर तत्कालीन नगरीय चिंतन की प्रकृति को स्पष्ट करना है।

प्रमुख शब्द– महाभारत, आदर्श नगर, नगरीकरण, दुर्ग, नगर–योजना, वाणिज्य, शिल्प, राजधर्म।

प्रस्तावना

प्राचीन भारतीय इतिहास में नगरों का विकास दीर्घकालीन सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक परिवर्तनों की परिणति था। नगरों का निर्माण केवल जनसंख्या के एक स्थान पर एकत्रित हो जाने से नहीं हुआ, बल्कि कृषि–अधिशेष, शिल्प–विशेषीकरण, व्यापार, प्रशासनिक केंद्रीकरण तथा राजनीतिक सत्ता के विस्तार ने नगरीय जीवन के विकास को गति प्रदान की। महाभारत इसी विकसित नगरीय चेतना के अनेक पक्षों को साहित्यिक एवं राजनीतिक आख्यान के माध्यम से प्रस्तुत करता है।

महाभारत में हस्तिनापुर, इन्द्रप्रस्थ, मथुरा, द्वारका, विराटनगर, राजगृह, काशी, कौशाम्बी आदि अनेक नगरों का उल्लेख मिलता है। इन नगरों का स्वरूप एकरूप नहीं था। कुछ राजनीतिक राजधानियाँ थीं, कुछ व्यापारिक एवं सांस्कृतिक केन्द्र, जबकि कुछ अपनी सामरिक स्थिति के कारण महत्त्वपूर्ण थे। इस विविधता से स्पष्ट होता है कि प्राचीन भारतीय चिंतन में नगर को एक बहु–कार्यात्मक संस्था के रूप में देखा गया था।

विशेष रूप से शान्तिपर्व में भीष्म द्वारा युधिष्ठिर को दिए गए राजधर्म संबंधी उपदेश नगर की आदर्श संरचना को समझने के लिए अत्यंत महत्त्वपूर्ण हैं। यहाँ नगर को केवल निवास–स्थान नहीं माना गया, बल्कि उसके लिए सुरक्षा, अर्थव्यवस्था, जल–संसाधन, खाद्य भंडारण, शिल्प, व्यापार, प्रशासन और सामाजिक अनुशासन की व्यवस्थित व्यवस्था आवश्यक मानी गई है। इस दृष्टि से महाभारत का नगर–विवेचन प्राचीन भारतीय नगरीय चिंतन के अध्ययन में महत्त्वपूर्ण प्राथमिक साहित्यिक आधार प्रस्तुत करता है।

महाभारत में नगर की अवधारणा

महाभारत में नगर की अवधारणा राजनीतिक सत्ता, प्रशासनिक संगठन, सुरक्षा तथा सामाजिक–आर्थिक जीवन के समन्वित केन्द्र के रूप में सामने आती है। नगर केवल निवास का स्थान नहीं था, बल्कि राजा की सत्ता, प्रजा के संरक्षण, आर्थिक गतिविधियों तथा राजकीय प्रतिष्ठा का प्रमुख केन्द्र माना जाता था। इस दृष्टि से राजा के लिए ऐसी राजधानी की आवश्यकता मानी गई है, जो उसके निवास, प्रशासन तथा राज्य की सुरक्षा के लिए उपयुक्त हो। युधिष्ठिर द्वारा भीष्म से स्पष्ट रूप से पूछा जाता है–"***कथंविधं पुरं राजा स्वयमावस्तुमर्हति। कृतं वा कारयित्वा वा तन्मे ब्रूहि पितामह***"[1] अर्थात् राजा को किस प्रकार के नगर में निवास करना चाहिए तथा क्या उसे पहले से निर्मित नगर में रहना चाहिए अथवा नया नगर बनवाना चाहिए? इसके उत्तर में भीष्म नगर की सुरक्षा, दुर्ग–व्यवस्था तथा राजकीय निवास के संबंध में विस्तृत निर्देश देते हैं।

इससे स्पष्ट होता है कि महाभारत में नगर को स्थिर एवं अपरिवर्तनीय इकाई के रूप में नहीं देखा गया था, बल्कि राजनीतिक एवं प्रशासनिक आवश्यकताओं के अनुरूप उसके निर्माण, विस्तार और पुनर्संगठन की कल्पना की गई थी। नगर की उपयोगिता उसके आकार अथवा वैभव से अधिक उसकी सुरक्षा, प्रशासनिक सुविधा, संसाधन–संपन्नता तथा राजकीय आवश्यकताओं की पूर्ति में निहित थी। शान्तिपर्व में आगे नगर के लिए दुर्ग, भंडार, सेना, जल–संसाधन तथा अन्य आवश्यक व्यवस्थाओं का उल्लेख मिलता है, जिससे आदर्श नगर की एक समग्र अवधारणा सामने आती है।

इन्द्रप्रस्थ की स्थापना का प्रसंग इस संदर्भ में विशेष महत्त्व रखता है। धृतराष्ट्र द्वारा पाण्डवों को खाण्डवप्रस्थ में निवास करने के लिए भेजे जाने के प्रसंग में स्वयं नगर के नियोजन संबंधी विशेषताएँ उल्लिखित हैं। वहाँ खाण्डवप्रस्थ को "***पुरं जानपदोपेतं सुबिभक्तमहापथम्***" अर्थात् जनपद से युक्त और सुव्यवस्थित विशाल मार्गों वाला नगर बनाने की बात कही गई है। इस उल्लेख से नगर के साथ जनपद, सुव्यवस्थित मार्ग तथा संगठित निवास–व्यवस्था के संबंध का संकेत मिलता है। खाण्डवप्रस्थ पहुँचने के पश्चात् पाण्डवों द्वारा वहाँ निवास करने तथा उसे विकसित करने का प्रसंग आगे इन्द्रप्रस्थ की स्थापना की पृष्ठभूमि निर्मित करता है। महाभारत के आदिपर्व में इन्द्रप्रस्थ नगर के निर्माण का विस्तृत वर्णन मिलता है। नगर में सुदृढ़ प्राकार, विशाल द्वार, युद्धोपयोगी उपकरण, सैनिक सुरक्षा, सुव्यवस्थित एवं विस्तृत मार्ग तथा ऊँचे भवनों का उल्लेख किया गया है। नगर को "इन्द्रप्रस्थ" नाम से अभिहित किया गया और उसकी संरचना को भोगवती तथा इन्द्रपुरी जैसी भव्यता से जोड़ा गया है। विशेष रूप से श्लोक 51–52 में इन्द्रप्रस्थ नगर के बसाए जाने तथा उसके विकसित स्वरूप का उल्लेख प्राप्त होता है।[2]

इन्द्रप्रस्थ की नगरीय संरचना का वर्णन करते हुए महाभारत में नगर के भीतर सुव्यवस्थित महापथ, सुदृढ़ भवन, सुरक्षा–प्रबंध तथा राजकीय स्थापत्य का उल्लेख मिलता है। इससे यह संकेत मिलता है कि नगर–निर्माण को केवल आवासीय आवश्यकता के रूप में नहीं देखा गया था, बल्कि उसमें सैन्य सुरक्षा, राजकीय प्रतिष्ठा, आवागमन तथा सामाजिक जीवन की आवश्यकताओं को भी सम्मिलित किया गया था। इस दृष्टि से इन्द्रप्रस्थ का आख्यान प्राचीन भारतीय नगरीय चिंतन में योजनाबद्ध नगर–निर्माण की साहित्यिक अभिव्यक्ति के रूप में महत्त्वपूर्ण है।[3] इन्द्रप्रस्थ के विकसित स्वरूप की पुष्टि उसके बाद के प्रसंगों में भी होती है। जब श्रीकृष्ण यादवों के साथ इन्द्रप्रस्थ पहुँचते हैं, तब नगर को "संमृष्टसिक्तपन्थानं", अर्थात् स्वच्छ एवं जल से सिंचित मार्गों वाला तथा "हृष्टपुष्टजनाकीर्णं वणिग्भिरुपशोभितम्", अर्थात् स्वस्थ–समृद्ध जनसमुदाय और व्यापारियों से सुशोभित बताया गया है। यह उल्लेख विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि इससे नगर के आर्थिक जीवन, स्वच्छता तथा व्यापारिक गतिविधियों का प्रत्यक्ष संकेत मिलता है।[4]

इस प्रकार महाभारत में नगर की अवधारणा को तीन परस्पर संबद्ध स्तरों पर समझा जा सकता है– राजनीतिक सत्ता का केन्द्र,[5] आर्थिक–सामाजिक संगठन का केन्द्र तथा स्थापत्य एवं सांस्कृतिक प्रतिष्ठा का केन्द्र। इन्द्रप्रस्थ का उदाहरण इन तीनों पक्षों को एक साथ प्रस्तुत करता है। एक ओर यहाँ राजा और राजकीय सत्ता का केन्द्र विकसित होता है, दूसरी ओर व्यापारी एवं समृद्ध नागरिक नगर के आर्थिक जीवन को सक्रिय बनाते हैं और तीसरी ओर सुव्यवस्थित मार्ग, भव्य भवन, प्राकार एवं द्वार उसकी विकसित स्थापत्य एवं सुरक्षा–व्यवस्था को व्यक्त करते हैं। अतः महाभारत में नगर को केवल जनसंख्या के संकेन्द्रण के रूप में न देखकर राज्य, समाज, अर्थव्यवस्था, सुरक्षा और स्थापत्य के परस्पर संबंधों से निर्मित संगठित संस्था के रूप में समझना अधिक उपयुक्त है।[6]

आदर्श नगर और दुर्ग–व्यवस्था

महाभारत में नगर की सुरक्षा को अत्यंत महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है। प्राचीन राज्य–व्यवस्था में राजा के

निवास तथा प्रशासनिक केन्द्र के रूप में विकसित नगर का सुरक्षित होना राज्य की स्थिरता के लिए आवश्यक माना गया था। युधिष्ठिर द्वारा राजा के निवास के लिए उपयुक्त नगर के संबंध में पूछे जाने पर भीष्म नगर–निर्माण से पूर्व उसकी दुर्ग–व्यवस्था पर विशेष विचार करने का निर्देश देते हैं। वे स्पष्ट रूप से कहते हैं– "षड्विधं दुर्गमास्थाय पुराण्यथ निवेशयेत्। सर्वसम्पत्प्रधानं यद् बाहुल्यं चापि सम्भवेत्घ्" अर्थात् राजा को छह प्रकार के दुर्गों में से उपयुक्त दुर्ग का आश्रय लेकर ऐसे नगरों को बसाना चाहिए, जो विविध प्रकार की सम्पत्तियों एवं आवश्यक वस्तुओं से सम्पन्न हों।

महाभारत में दुर्गों के छह प्रकार बताए गए हैं– "धन्वदुर्गं महीदुर्गं गिरिदुर्गं तथैव च। मनुष्यदुर्गमब्दुर्गं वनदुर्गं च तानि षट्घ्" अर्थात् धन्वदुर्ग, महीदुर्ग, गिरिदुर्ग, मनुष्यदुर्ग,[7] अब्दुर्ग अथवा जलदुर्ग तथा वनदुर्ग ये छह प्रकार के दुर्ग हैं। इन दुर्गों का वर्गीकरण केवल स्थापत्य संबंधी नहीं था, बल्कि तत्कालीन सैन्य–भौगोलिक चिंतन को भी व्यक्त करता है। दुर्ग की सुरक्षा उसके प्राकृतिक परिवेश, स्थलाकृति, जल–स्रोत, वन, भूमि तथा मानव–बल जैसे विभिन्न साधनों पर आधारित हो सकती थी। इस प्रकार पर्वतीय क्षेत्र में गिरिदुर्ग, वन–प्रदेश में वनदुर्ग, जल से सुरक्षित क्षेत्र में अब्दुर्ग तथा शुष्क अथवा मरुस्थलीय भूभाग में धन्वदुर्ग जैसी व्यवस्थाएँ स्थानीय भौगोलिक परिस्थितियों को सैन्य सुरक्षा के साथ जोड़ती थीं। इस दृष्टि से महाभारत का दुर्ग–विधान प्राकृतिक भूगोल और राजनीतिक सुरक्षा के पारस्परिक संबंध को स्पष्ट करता है।

महाभारत में आदर्श नगर की सुरक्षा केवल उसके बाहरी दुर्ग से निर्धारित नहीं होती थी। नगर के भीतर पर्याप्त अन्न एवं आयुध का संग्रह, सुदृढ़ प्राकार और परिखा तथा सैन्य संसाधनों की उपलब्धता भी आवश्यक मानी गई है। भीष्म कहते हैं– "यत्पुरं दुर्गसम्पन्नं धान्यायुधसमन्वितम्। दृढप्राकारपरिखं हस्त्यश्वरथसंकुलम्"[8] अर्थात् वह नगर श्रेष्ठ है जो दुर्गों से सम्पन्न हो, अन्न एवं शस्त्रों से युक्त हो, जिसके प्राकार और परिखा सुदृ ढ़ हों तथा जिसमें हाथी, घोड़े और रथ पर्याप्त संख्या में उपलब्ध हों। यह विवरण नगर–सुरक्षा की एक बहुस्तरीय व्यवस्था को सामने लाता है। प्राकार और परिखा नगर की बाहरी सुरक्षा सुनिश्चित करते थे, जबकि अन्न एवं आयुध संकट अथवा युद्ध की स्थिति में उसकी आंतरिक आत्मनिर्भरता बनाए रखने के साधन थे। इसी प्रकार हाथी, घोड़े और रथ केवल सैन्य शक्ति के प्रतीक नहीं थे, बल्कि तत्कालीन राजकीय एवं सैन्य परिवहन व्यवस्था के महत्त्वपूर्ण अंग भी थे। अतः आदर्श नगर की सुरक्षा को केवल स्थापत्य–व्यवस्था के रूप में नहीं, बल्कि सैन्य शक्ति, संसाधन–संचय और भौतिक संरचना के संयुक्त तंत्र के रूप में समझा जाना चाहिए।

महाभारत में नगर की सुरक्षा के साथ उसकी आर्थिक सम्पन्नता को भी अनिवार्य रूप से जोड़ा गया है। छह प्रकार के दुर्गों का आश्रय लेकर नगर बसाने का निर्देश देते हुए उसी प्रसंग में नगर को "सर्वसम्पत्प्रधान" बनाने की बात कही गई है। इससे स्पष्ट है कि सुरक्षित नगर को आर्थिक रूप से भी समर्थ होना चाहिए। केवल दुर्ग और सेना किसी नगर को दीर्घकाल तक सुरक्षित नहीं रख सकते; उसके लिए अन्न, धन, आयुध, पशुधन तथा अन्य आवश्यक वस्तुओं का पर्याप्त भंडार भी आवश्यक था।

इस प्रकार महाभारत में आदर्श नगर की पहली आवश्यकता सुरक्षा अवश्य है, किंतु सुरक्षा की अवधारणा व्यापक है। इसमें दुर्ग, प्राकार, परिखा, सैन्यबल, अन्नागार, आयुध–संग्रह, पशुधन तथा संसाधनों की उपलब्धता सभी सम्मिलित हैं। इस दृष्टि से महाभारत का नगर–विधान तत्कालीन राजनीतिक चिंतन में विकसित उस धारणा को व्यक्त करता है जिसमें राजधानी को केवल राजा का निवास न मानकर सुरक्षित, संसाधन–संपन्न, सैन्य दृष्टि से सक्षम और संकट के समय आत्मनिर्भर राजनीतिक केन्द्र के रूप में देखा गया था।[9]

नगर की भौतिक संरचना

महाभारत में आदर्श नगर की भौतिक संरचना का वर्णन करते समय उसकी सुरक्षा, आवागमन, स्थापत्य तथा सार्वजनिक उपयोग की व्यवस्थाओं को परस्पर संबद्ध रूप में प्रस्तुत किया गया है। नगर केवल भवनों का समूह नहीं था, बल्कि उसके निर्माण में प्राकार, परिखा, द्वार, राजमार्ग, आवासीय भवन तथा राजकीय संस्थानों की समुचित व्यवस्था अपेक्षित थी। शान्तिपर्व में आदर्श नगर के संबंध में कहा गया है– "यत्पुरं दुर्गसम्पन्नं धान्यायुधसमन्वितम्। दृढप्राकारपरिखं हस्त्यश्वरथसंकुलम्"[10] अर्थात् ऐसा नगर श्रेष्ठ माना गया है जो दुर्गों से सम्पन्न हो, अन्न एवं शस्त्रों से युक्त हो, जिसके प्राकार और परिखा सुदृढ़ हों तथा जिसमें हाथी, घोड़े और रथ पर्याप्त संख्या में उपलब्ध हों। इससे नगर की भौतिक संरचना में सुरक्षा–व्यवस्था तथा सैन्य आवश्यकताओं के समावेश का स्पष्ट संकेत मिलता है।

नगर के चारों ओर निर्मित प्राकार और परिखा उसकी बाहरी सुरक्षा के प्रमुख साधन थे। प्राकार से नगर को चारों ओर से घेरकर सुरक्षित किया जाता था, जबकि परिखा शत्रु के लिए नगर तक सीधे पहुँचने में बाधा उत्पन्न करती थी। इस प्रकार नगर–योजना में प्राकृतिक एवं कृत्रिम दोनों प्रकार की रक्षात्मक व्यवस्थाओं का उपयोग

किया जाता था। इसके साथ ही नगर में ऐसे मार्गों की आवश्यकता थी जिनसे सैन्य तथा राजकीय वाहनों का आवागमन सुगमता से हो सके। इन्द्रप्रस्थ के निर्माण के प्रसंग में नगर को "पुरं जानपदोपेतं सुबिभक्तमहापथम्"[11] कहा गया है, अर्थात् जनपद से युक्त तथा सुविभक्त एवं विस्तृत मार्गों वाला नगर। यहाँ 'सुबिभक्तमहापथ' का उल्लेख विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि यह नगर के मार्ग–विन्यास में पूर्वनियोजन और आवागमन की सुविधा की ओर संकेत करता है। महाभारत में नगर के भीतर राजकीय एवं सार्वजनिक भवनों की उपस्थिति भी नगरीय संरचना का आवश्यक अंग दिखाई देती है। इन्द्रप्रस्थ में निर्मित मयसभा इसका प्रमुख उदाहरण है। सभापर्व में मय द्वारा निर्मित सभा–भवन का अत्यंत विस्तृत और वैभवपूर्ण वर्णन मिलता है। उसमें विभिन्न प्रकार के भवन, स्तम्भ, द्वार, जलाशय तथा स्थापत्य–कौशल से संबंधित विवरण प्राप्त होते हैं। मयसभा का यह वर्णन इस तथ्य की ओर संकेत करता है कि राजकीय नगर में सभा–भवन केवल वास्तुशिल्प की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण नहीं थे, बल्कि वे राजनीतिक निर्णय, राजकीय प्रतिष्ठा तथा सार्वजनिक गतिविधियों के केन्द्र भी थे।

इसी प्रकार नगर के आर्थिक स्वरूप को उसके बाजारों और व्यापारिक गतिविधियों से समझा जा सकता है। इन्द्रप्रस्थ के वर्णन में नगर को "हृष्टपुष्टजनाकीर्णं वणिग्भिरुपशोभितम्"[12] कहा गया है, अर्थात् वह स्वस्थ एवं समृद्ध जनसमुदाय तथा व्यापारियों से सुशोभित था। इसी वर्णन में नगर के मार्गों को "संमृष्टसिक्तपन्थानम्" कहा गया है, जिससे मार्गों की स्वच्छता और उनके रखरखाव की ओर संकेत मिलता है। यह उल्लेख महत्त्वपूर्ण है क्योंकि इससे नगर की भौतिक संरचना और आर्थिक जीवन के मध्य प्रत्यक्ष संबंध स्थापित होता है। नगर के भीतर विभिन्न सामाजिक एवं व्यावसायिक समूहों की उपस्थिति भी उसकी संरचना को बहुआयामी बनाती थी। शिल्पियों, व्यापारियों, सैनिकों, विद्वानों तथा अन्य नागरिकों की उपस्थिति नगर को विशिष्ट कार्य–क्षेत्रों में विभाजित करने की आवश्यकता उत्पन्न करती थी। शान्तिपर्व में आदर्श नगर के संबंध में विद्वानों तथा शिल्पियों की उपस्थिति को विशेष महत्त्व दिया गया है– "विद्वांसः शिल्पिनो यत्र नित्यचारुचतुस्संचिताः। धार्मिकाश्च जनो यत्र दाक्ष्यमुत्तममास्थिताः"[13] इससे स्पष्ट होता है कि नगर की श्रेष्ठता उसके भवनों और प्राकारों से ही निर्धारित नहीं होती थी, बल्कि उसमें निवास करने वाले विभिन्न ज्ञान एवं व्यवसाय–समुदाय भी उसकी नगरीय संरचना का आवश्यक अंग थे। नगर की भौतिक संरचना में भंडारगृह एवं संसाधन–संग्रह की व्यवस्था भी महत्त्वपूर्ण थी। शान्तिपर्व में आदर्श नगर के लिए अन्न तथा आयुधों की पर्याप्त उपलब्धता पर बल दिया गया है। इससे यह स्पष्ट होता है कि नगर–योजना में केवल आवासीय आवश्यकताओं को ही ध्यान में नहीं रखा जाता था, बल्कि युद्ध अथवा संकट की स्थिति में नगर की आपूर्ति बनाए रखने के लिए भंडारण–व्यवस्था भी आवश्यक मानी जाती थी। इस प्रकार अन्नागार, आयुधागार तथा अन्य संसाधन–संग्रह नगर की आत्मनिर्भरता और सुरक्षा से प्रत्यक्ष रूप से जुड़े हुए थे।[14]

इस प्रकार महाभारत में नगर की भौतिक संरचना बहुस्तरीय एवं कार्यात्मक दिखाई देती है। प्राकार और परिखा सुरक्षा प्रदान करते थे, महापथ आवागमन को सुगम बनाते थे, राजसभा एवं अन्य राजकीय भवन प्रशासनिक गतिविधियों के केन्द्र थे, बाजार एवं व्यापारिक क्षेत्र आर्थिक जीवन को सक्रिय करते थे तथा भंडारगृह नगर की संसाधन–सुरक्षा सुनिश्चित करते थे। इस समन्वित व्यवस्था से स्पष्ट होता है कि महाभारत में नगर–योजना केवल भवन–निर्माण तक सीमित नहीं थी, बल्कि सुरक्षा, प्रशासन, व्यापार, आवागमन, सामाजिक संगठन और नागरिक आवश्यकताओं को एक साथ ध्यान में रखकर विकसित की गई थी। इस दृष्टि से महाभारत का नगरीय चिंतन प्राचीन भारतीय नगर–योजना की एक कार्यात्मक एवं समेकित अवधारणा को अभिव्यक्त करता है।

राजप्रशासन और आदर्श नगर

महाभारत में नगर का प्रशासन राजा के राजधर्म का एक महत्वपूर्ण अंग माना गया है। राजा के लिए केवल राज्य–विस्तार और सैन्य शक्ति पर्याप्त नहीं थी, बल्कि उसे नगर तथा राष्ट्र में नियुक्त अधिकारियों, मंत्रियों, सैनिकों और अन्य राजकीय कर्मचारियों की योग्यता, निष्ठा तथा कार्यक्षमता पर निरंतर दृष्टि रखनी अपेक्षित थी। नारद द्वारा युधिष्ठिर से पूछे गए प्रश्नों में मंत्रियों की गोपनीयता, उनकी विद्वत्ता तथा उनके माध्यम से राज्य की सुरक्षा का विशेष उल्लेख मिलता है– "कच्चित्संवृतमन्त्रैस्ते अमात्यैः शास्त्रकोविदैः। राष्ट्रं सुरक्षितं तात शत्रुभिर्न विलुप्यते"[15] अर्थात् क्या शास्त्रों के ज्ञाता और गोपनीय मंत्रणा करने वाले अमात्यों के द्वारा तुम्हारा राष्ट्र सुरक्षित है और शत्रुओं द्वारा उसका विनाश नहीं किया जा रहा है? इससे स्पष्ट है कि नगर तथा राज्य की प्रशासनिक व्यवस्था में योग्य एवं विश्वसनीय अधिकारियों की नियुक्ति को अत्यंत महत्त्व दिया गया था।

राजकीय प्रशासन में अधिकारियों तथा सैनिकों के प्रति उचित व्यवहार को भी आवश्यक माना गया है। नारद युधिष्ठिर से सेनापति की योग्यता, सैनिकों के समय पर वेतन तथा उनके सम्मान के विषय में प्रश्न करते हैं। वे पूछते हैं–"कच्चिद्बलस्य ते मुख्याः सर्वे युद्धविशारदाः। दृष्टापदाना विक्रान्तास्त्वया सत्कृत्य मानिताः"[16] तथा

सैनिकों के संबंध में यह भी पूछा गया है कि क्या उन्हें उनका भोजन और वेतन समय पर प्रदान किया जाता है– ”कच्चिद्बलस्य भक्तं च वेतनं च यथोचितम्। सम्प्राप्तकालं दातव्यं ददासि न विकर्षसि“[17]। इन निर्देशों से स्पष्ट होता है कि आदर्श नगर–प्रशासन में सैन्य संगठन और सैनिकों का कल्याण दोनों राजकीय उत्तरदायित्व के अंतर्गत आते थे। नगर–प्रशासन का एक महत्वपूर्ण पक्ष नगरवासियों तथा राष्ट्रवासियों के प्रति राजकीय संरक्षण था। नारद युधिष्ठिर से पूछते हैं– ”कच्चित्ते पुरुषा राजन् पुरे राष्ट्रे च मानिताः। उपानयन्ति पण्यानि उपधाभिरवञ्चिताः“[18] अर्थात् क्या नगर और राष्ट्र में रहने वाले तुम्हारे कर्मचारी एवं पुरुष सम्मानित हैं और क्या वे बिना किसी छल–कपट के व्यापारिक वस्तुओं को लाते हैं? इस कथन से प्रशासनिक कर्मचारियों की कार्यनिष्ठा के साथ–साथ व्यापारिक गतिविधियों में ईमानदारी एवं सुरक्षा की अपेक्षा भी स्पष्ट होती है।

महाभारत में व्यापारियों के संरक्षण को भी राजधर्म का अंग माना गया है। दूर–दूर से व्यापार के उद्देश्य से आने वाले वणिकों के संबंध में नारद पूछते हैं– ”कच्चिदभ्यागता दूराद् वणिजो लाभकारणात्। यथोक्तमवहार्यन्ते शुल्कं शुल्कोपजीविभिः“[19] अर्थात् क्या लाभ की इच्छा से दूर प्रदेशों से आने वाले व्यापारियों से नियमानुसार ही शुल्क लिया जाता है? इसके तत्काल बाद नगर एवं राष्ट्र में व्यापारियों तथा अन्य पुरुषों के सम्मान और उनके व्यापारिक व्यवहार की निष्पक्षता की बात आती है। इससे स्पष्ट है कि राजप्रशासन का उद्देश्य केवल कर–संग्रह करना नहीं था, बल्कि व्यापारिक गतिविधियों को सुरक्षित एवं व्यवस्थित रखना भी था। इसी क्रम में शिल्पियों की आवश्यकताओं को पूरा करना भी राजा के दायित्वों में सम्मिलित था। नारद युधिष्ठिर से पूछते हैं– ”द्रव्योपकरणं कच्चित् सर्वदा सर्वशिल्पिनाम्। चातुर्मास्यावरे सम्यङ् नियतं सम्प्रयच्छसिघ्“[20] अर्थात् क्या तुम सभी शिल्पियों को उनके कार्य के लिए आवश्यक द्रव्य एवं उपकरण समय–समय पर उचित रूप से उपलब्ध कराते हो? यह उल्लेख विशेष रूप से महत्वपूर्ण है क्योंकि इससे स्पष्ट होता है कि नगर की आर्थिक व्यवस्था में शिल्पकारों की भूमिका को राजकीय स्तर पर मान्यता प्राप्त थी और उनके उत्पादन के लिए आवश्यक साधनों की उपलब्धता को शासन की जिम्मेदारी माना गया था। राजा की जिम्मेदारी केवल नगर के आर्थिक वर्गों तक सीमित नहीं थी, बल्कि सामान्य कृषक एवं ग्रामीण अर्थव्यवस्था की सुरक्षा भी उसके प्रशासनिक दायित्व का हिस्सा थी। नारद द्वारा युधिष्ठिर से पूछा जाता है–”कच्चित्ते कृषितन्त्रेषु गोषु पुष्पफलेषु च...“[21] तथा आगे कृषि के लिए जलाशयों और बीज की व्यवस्था के विषय में भी प्रश्न किया गया है। इससे नगर और ग्रामीण अर्थव्यवस्था के पारस्परिक संबंध का भी संकेत मिलता है। नगर की आर्थिक समृद्धि कृषि–उत्पादन और ग्रामीण अधिशेष पर निर्भर थी; इसलिए आदर्श राजप्रशासन में नगर तथा ग्राम दोनों की आर्थिक सुरक्षा को समान रूप से महत्त्व दिया गया था। राजकीय प्रशासन में सूचना–संग्रह और निगरानी का भी विशेष महत्व था। राजा को अपने मंत्रियों, अधिकारियों, सेना तथा विभिन्न प्रशासनिक इकाइयों की गतिविधियों से निरंतर अवगत रहना आवश्यक था। मंत्रणा को गोपनीय रखने और शत्रुओं से राज्य की रक्षा करने के संबंध में नारद का प्रश्न– ”कच्चित्संवृतमन्त्रैस्ते अमात्यैः शास्त्रकोविदैः। राष्ट्रं सुरक्षितं तात शत्रुभिर्न विलुप्यते“[22] राजकीय सूचना–व्यवस्था तथा गुप्त मंत्रणा की आवश्यकता को स्पष्ट करता है। अतः प्रशासनिक दृष्टि से आदर्श नगर केवल राजकीय अधिकारियों की उपस्थिति से नहीं, बल्कि सूचना, गोपनीयता, निगरानी, सुरक्षा और उत्तरदायित्व की व्यवस्थित व्यवस्था से संचालित होता था।

इस प्रकार महाभारत में आदर्श नगर का राजप्रशासन बहुस्तरीय दिखाई देता है। राजा के अधीन मंत्रियों एवं अमात्यों की व्यवस्था, योग्य सेनापति और सैनिक, व्यापारियों के लिए सुरक्षित वातावरण, शिल्पियों को आवश्यक उपकरण, कृषकों की आर्थिक सुरक्षा तथा प्रशासनिक कार्यों की निरंतर निगरानी ये सभी नगर की सुव्यवस्थित शासन–व्यवस्था के आवश्यक अंग थे। इस दृष्टि से महाभारत का आदर्श नगर केवल दुर्ग और भवनों से निर्मित भौतिक इकाई नहीं था, बल्कि वह एक ऐसी प्रशासनिक संस्था था जिसमें सुरक्षा, अर्थव्यवस्था, उत्पादन, व्यापार और नागरिक हित परस्पर जुड़े हुए थे। राजा का दायित्व इन सभी पक्षों में संतुलन स्थापित करना था। यही संतुलन महाभारत की नगरीय अवधारणा को केवल स्थापत्य संबंधी विचार से आगे बढ़ाकर राजनीतिक एवं सामाजिक प्रशासन की समेकित अवधारणा में परिवर्तित करता है।

निष्कर्ष

महाभारत में आदर्श नगर की अवधारणा बहुआयामी एवं समन्वित है। यहाँ नगर को केवल राजकीय सत्ता के निवास–स्थान अथवा सैन्य दुर्ग के रूप में नहीं देखा गया, बल्कि उसे राजनीतिक प्रशासन, आर्थिक उत्पादन, व्यापार, शिल्प, ज्ञान, धर्म, जल–संसाधन, खाद्य सुरक्षा और सामाजिक जीवन के समेकित केन्द्र के रूप में परिभाषित किया गया है।

महाभारत के अनुसार श्रेष्ठ नगर वह है जहाँ मजबूत सुरक्षा–व्यवस्था के साथ पर्याप्त अन्न एवं संसाधन उपलब्ध हों, व्यापार और शिल्प विकसित हों, विद्वान एवं कुशल शिल्पी निवास करते हों, जल–स्रोत और उद्यान

हों तथा नागरिक धार्मिक, सदाचारी और अपने कार्यों में दक्ष हों। इस प्रकार नगर की श्रेष्ठता का आधार केवल भौतिक वैभव नहीं, बल्कि सुरक्षा, आर्थिक समृद्धि, सामाजिक अनुशासन, बौद्धिक विकास और सांस्कृतिक जीवन का संतुलित समन्वय था। ऐतिहासिक दृष्टि से महाभारत की यह अवधारणा प्राचीन भारतीय नगरीय चिंतन के उस विकसित रूप को सामने लाती है जिसमें नगर राज्य की शक्ति, अर्थव्यवस्था और संस्कृति का केन्द्र बन चुका था। इसलिए महाभारत में वर्णित आदर्श नगर की अवधारणा भारतीय नगरीकरण के इतिहास को समझने के साथ–साथ प्राचीन भारत की राजनीतिक एवं सामाजिक संस्थाओं के अध्ययन के लिए भी महत्त्वपूर्ण स्रोत सिद्ध होती है।

Author's Declaration:

I/We, the author(s)/co-author(s), declare that the entire content, views, analysis, and conclusions of this article are solely my/our own. I/We take full responsibility, individually and collectively, for any errors, omissions, ethical misconduct, copyright violations, plagiarism, defamation, misrepresentation, or any legal consequences arising now or in the future. The publisher, editors, and reviewers shall not be held responsible or liable in any way for any legal, ethical, financial, or reputational claims related to this article. All responsibility rests solely with the author(s)/co-author(s), jointly and severally. I/We further affirm that there is no conflict of interest financial, personal, academic, or professional regarding the subject, findings, or publication of this article.

संदर्भ–

1. महाभारत, शान्तिपर्व, राजधर्मानुशासनपर्व, 86 / 1
2. महाभारत, शान्तिपर्व, राजधर्मानुशासनपर्व, अध्याय 86, श्लोक 1–32
3. महाभारत, आदिपर्व, अध्याय 61, श्लोक 26–28
4. महाभारत, आदिपर्व, अध्याय 206, श्लोक 45–52
5. महाभारत, आदिपर्व, अध्याय 247 / 23–24
6. महाभारत, शान्तिपर्व, राजधर्मानुशासनपर्व, 87 / 4
7. महाभारत, शान्तिपर्व, राजधर्मानुशासनपर्व, 87 / 5
8. महाभारत, शान्तिपर्व, राजधर्मानुशासनपर्व, 87 / 6
9. महाभारत, शान्तिपर्व, राजधर्मानुशासनपर्व, 87 / 4
10. महाभारत, शान्तिपर्व, राजधर्मानुशासनपर्व, 87 / 6
11. महाभारत, आदिपर्व, 61 / 26
12. महाभारत, सभापर्व, 3 / 1–30
13. महाभारत, आदिपर्व, 247 / 23–24
14. महाभारत, शान्तिपर्व, 67 / 7
15. महाभारत, सभापर्व, 5 / 30
16. महाभारत, सभापर्व, 5 / 36–37
17. महाभारत, सभापर्व, 5 / 38
18. महाभारत, सभापर्व, 5 / 104
19. महाभारत, सभापर्व, 5 / 103
20. महाभारत, सभापर्व, 5 / 107
21. महाभारत, सभापर्व, 5 / 106 तथा 5 / 80–82
22. महाभारत, सभापर्व, 5 / 30

Cite this Article

'आंचल देवी; डॉ. दीपा गुप्ता', "महाभारत में आदर्श नगर की अवधारणाः एक ऐतिहासिक अध्ययन", Research Vidyapith International Multidisciplinary Journal, ISSN: 3048-7331 (Online), Volume:3, Issue:8, August 2026.

"Copyright © 2026 The Author(s). This work is licensed under Creative Commons Attribution 4.0 (CC-BY), allowing others to use, share, modify, and distribute it with proper credit to the author."